सप्तम अध्याय

राज्यव्यवस्था वर्णन

धर्मसूत्रों में राज्य–व्यवस्था एक अनिवार्य विषय के रूप में है जिसका वर्णन प्रायः सभी धर्मसूत्रों में किया गया है। आपस्तम्बधर्मसूत्र में सभी वर्णों के कर्त्तव्य वर्णन के पश्चात् दशम पटल में राज्य-व्यवस्था के सन्दर्भ में वर्णन किया गया है।[1]

वैदिक युग में भी राजसत्ता का वर्णन विद्यमान था, एक राजा सिन्धु के किनारे पर राज करता था दूसरा सरस्वती के किनारे पर राज्य करता बतलाया गया है। इसी प्रकार अनेक छोटे–छोटे राजा आस–पास के क्षेत्रों में राज्य करते थे।[2] ऋग्वेद में भी राजा का वर्णन मिलता है तथा इसे जननायक कहा गया है। क्योंकि वह न्याय के सवन द्वारा इस पद को प्राप्त करता है। इस विषय में उल्लेख है कि "हे राजा ! तुम्हारे माता–पिता (लोकहितकारी) देवों के शत्रु बन कर मारे गए परन्तु तुम लोक सेवा के लिए जी रहे हो।" कितना कठिन सवन है।[3] ऋग्वेद में 'दाशराज्ञ युद्ध' और दान स्तुतियों का जो वर्णन मिलता है, वह राजव्यवस्था का ही प्रमाण है।[4]

गौतमधर्मसूत्र में कहा गया है कि ब्राह्मण को छोड़कर राजा सबका स्वामी होता है।[5] राजधर्म को विश्व का सबसे बड़ा धर्म-उद्देश्य सभी धर्मशास्त्रकारों ने माना है।[6]

---

1 व्याख्यातास्सर्ववर्णानां साधारण वैशेषिका धर्मा राज्ञस्तुविशेषाद्वक्ष्यामः।। आ0 ध0 सू0 2.10.25.1

2 वै0 वा0 का इति0 प्रथम सं0 (रमाकान्त शास्त्री), पृ0 73

3 प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या३यानिं चक्रथुः।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम्।। ऋग्वेद 6.59.1

4 वै0 वा0 का इति0 (रमा कान्त शास्त्री) पृ0 सं0 73

5 'राजा सर्वस्येष्टे ब्राह्मणवर्जम्' गौ0 ध0 सू 2.2.1

6 व0 ध0 सू0 19/1–2 वि0 ध0 सू0 3/2–3, मत्स्य पु0 215/63, मार्कण्डेय, पु0 27/28

राजा को अपने युग का निर्माता कहा गया है। राजा ही स्वर्ण युग का प्रवर्तक अथवा देश में विपत्तियां युद्ध या अशान्ति लाने वाला भी हो सकता है।[1] राजधर्म धर्मशास्त्र का महत्त्वपूर्ण विषय है ही किन्तु अर्थशास्त्र जो कि राजाओं के अधिकारों एवं उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित है को धर्मशास्त्र का ही अंग माना गया है।[2]

कौटिल्य ने तो राजा को ही संक्षेप में राज्य कह डाला है। वही मन्त्रियों, कर्मचारियों एवं अधीक्षकों की नियुक्तियां करता है।[3]

राजा एवं राजतन्त्र

राजा शब्द की निष्पत्ति राज्+कणिन् "कणिन् युवृधित-क्षिराजीति"[4] इत्यादि उणादि सूत्र से कणिन् प्रत्यय करने से होती है। राजा राजते शोभते इति। जिसका अर्थ है प्रभुः नृपतिः यथा रघुः।[5] निरुक्तकार के अनुसार 'राजृ' दीप्त्यर्थक धातु से राजा शब्द निष्पन्न होता है इसकी निरुक्ति 'राजा राजतेः' है जिसका अर्थ है चमकना।[6]

शब्द कल्पद्रुमकार एवं वामन शिवराम आप्टे ने इसके अनेक अर्थ किये हैं। "राजा भूपः महीक्षित् इत्यमरः, नरपतिः, पार्थः, नृपति, भूपालः, भूभृत्, महीपतिः, नाभि इत्यादि।"[7]

राज् धातु से क्विप् प्रत्यय करने पर राजा शब्द बनता है जिसका अर्थ है राज् +क्विप्– राजा, सरदार, युवाराज अथवा राज्+कनिन् रञ्जयति, मुखिया अथवा राज (भ्वा0

---

1 'युग प्रवर्तकों राजा धर्माधर्म प्रशिक्षणात्। युगानां न प्रजानां न दोषः किन्तु नृपस्य तु।। शुक्रनीतिसार 4/1/60, महाभा० उद्योग प0 132/16, शान्ति पं0 69/79, 91/6, 9, 56/6

2 धर्म शास्त्र का इति0, पृ0 583

3 राजा राज्यमिति प्रकृतिः संक्षेपः। कौटिल्य 8/2

4 उणादि सू. 1/156

5 शब्दकल्पद्रुमः पृ0 126

6 निरुक्त 2/1/13

7 शब्द कल्पद्रुमः पृ0 सं0 126

उभ0 राजति–ते राजित) चमकना, जगमगाना, शानदार, सुन्दर प्रतीत होना प्रमुख होना।[1] रेजे ग्रहमयीव सा भर्तृ।[2]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में राजा की विशेषता के विषय में कहा गया है कि वही राजा कल्याणकारी होता है जिसके राज्य में, ग्राम में अथवा वन में जीव–जन्तु तथा मनुष्यों को चोरों आदि का कोई भय नहीं होता।[3] वह प्राकृतिक विपत्तियों के आने पर जनता का दुःखमोचन या सहायता करता है।[4] अनेक स्थलों पर राजा के यश, आयु व राष्ट्र वृद्धि, शक्ति वृद्धि, राष्ट्र रक्षा आदि की कामना भी की गई है। अथर्ववेद[5] का यह मन्त्र इस विषय में सहायक सिद्ध है जिसका अर्थ है, हे अग्ने! तू (जातवेदाः अमाधृष्य) ज्ञान से परिपूर्ण और अजिक्य (अर्मत्य विराट्) अमर विशेष प्राकर का सम्राट (क्षत्र भूत् इह दीदिहि) क्षत्रियों का भरण–पोषण करने वाला होकर यहाँ प्रकाशित हो और (विश्वाः अमीवाः प्रमुञ्चन्) सब रोगों को दूर करता हुआ (मानुषीभिः शिवाभिः) मनुष्य सम्बन्धी कल्याणों के साथ (अद्यः नः गयं परि पाहि) आज हमारे घर ही रक्षा कर। अर्थात् अपने राज्य के सब रोग दूर कर और मनुष्यों के कल्याण करने वाली बातें करके हमारे घरों की उत्तम रक्षा करो।

गौतमधर्मसूत्र[6] अनुसार राजा को शास्त्रानुकूल आचरण करने वाला और पक्षपात रहित होकर साधुवचन बोलने वाला होना चाहिए। वह पवित्रमन से पवित्र विचारों वाला होना चाहिए। जितेन्द्रय गुणी, सहायकों से युक्त तथा साम, दाम आदि उपायों से सम्पन्न

---

1 सं0 हिन्दी को0 पृ0 851, 852, महा0 भा0शान्ति0 पं0 59/125

2 भर्तृ0 1/17, वी0 एस0 आप्टे सं0 हिन्दी को0 पृ0 सं0 852

3 क्षेमकृद्राजायस्यविषयेग्राम्येऽरण्ये वातस्कभयं न विद्यते। आ0 ध0 सू0 2.10.25.15

4 तत् कूटस्थाननीयो हि स्वामीति" कौटिल्य 8/1

5 अनाधृष्यो जातवेदा अमर्त्यो विराडाग्ने क्षत्र भृद्दीदिहीह। विश्वा अमीवाः प्रमुञ्चन्मानुषीभिः शिवाभिरद्य परिपाहि नो गयम्। अथर्व0 7.84-1

6 साधुकारी साधुवादी। गौ0 ध0 सू0 2.2.2

होना चाहिए।[1] ऋग्वेद[2] में सोम विषयक स्तुति में कहा गया है कि जो राजा ऐसी सहायता करता है उस प्रजा की सहायता करने वाले राजा की प्रशंसा करनी चाहिए।

गौतमधर्मसूत्र में उल्लेख प्राप्त होता है कि राजा और वेद का विद्वान् ब्राह्मण दोनों राज्य में व्रतों के (कर्म को) धारण करने वाले होते हैं तथा चारों वर्णों के मनुष्यों, वृक्षों आदि बढ़ने और घटने वाले, लुप्त चेतना वाले, स्थावर पदार्थों, पशु आदि चलने वाले जीवों, उड़ने वाले पक्षियों और सरकने वाले सर्पों आदि का जीवन, (वृष्टि द्वारा तथा रोग आदि उपद्रवों की शान्ति द्वारा) वृद्धि (चोरों को दण्ड देने से) रक्षा वर्णों के संकर का निरोध तथा विहित का उपदेश एवं अनुचित कर्म के निषेध तथा दण्ड–धारण द्वारा धर्म का प्रसार इन्ही दोनों (राजा और बहुश्रुत ब्राह्मण) के अधीन होता है।[3] ये दोनों मिलकर जगत् को एक अच्छा रास्ता दिखाते हैं।

मनु स्मृति में राजा को प्रजा का नियामक तथा मुखिया कहकर प्रजा का रक्षक कहा है। उसके न होने से सभी को भय से व्याकुल होना पड़ता है। ईश्वर ने सब की रक्षा के लिए राजा को उत्पन्न किया है।[4] राजा का प्रभाव अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्रमा, यम, कुबेर, वरूण, और महेन्द्र के तुल्य होता है।

---

1 शुचि जितेन्द्रियो गुणवत्सहायोपाय सम्पन्नः, गौ0 ध0 2.2.4

2 ते अस्य सन्तु केतवोऽमृत्यवोऽदाभ्यासो जनुषी उभे अनु येर्भिनृम्णा च देव्या च पुनत आदिद्राजानं मनना अगृभ्णत्। ऋग्वेद 9/70/3

3 द्वौ लोके धृतव्रतौ राजा ब्राह्मणश्च बहुश्रुतः। गौ0 ध0 सू0 1.8.1, तयोश्चतुर्विधस्य ..... जीवनम्। गौ0 ध0 सू0 1.8.2, प्रसूती रक्षणभसंकरो धर्मः। गौ0 ध0 सू0 1.8.3

4 अराजके हि लोकेऽस्मिन्सर्वतोविद्रुते भयात्।
रक्षार्थमस्य सर्वस्य राजानमसृजत्प्रभुः।। मनु स्मृ0 7.3

आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख हुआ है कि राजा को अपने राज्य में किसी भी कमी के कारण अथवा जानबूझकर किसी को भूख, रोग, शीत, ताप आदि से कष्ट नहीं पहुँचाना चाहिए।[1]

राजा को अपने गुरुओं तथा मन्त्रियों की अपेक्षा अधिक आराम अर्थात् भोजन, वस्त्र आदि की दृष्टि से उत्तम जीवन व्यतीत नहीं करना चाहिए। जो राजा अपने सेवकों को किसी प्रकार की हानि पहुँचाये बिना, ब्राह्मणों को उनकी विद्या तथा चरित्र के अनुसार धन प्रदान करता है वह अनन्त लोकों को प्राप्त करता है।[2]

यदि चोर आदि द्वारा ब्राह्मण की सम्पत्ति अपहृत हो जाती थी तथा राजा उसे वापस दिलाने के प्रयास में यदि मृत्यु को भी प्राप्त हो जाता था तो वह एक ऐसा यज्ञ माना जाता था कि जिसमें उसका शरीर ही यज्ञ का यूप होता है तथा उसके द्वारा वह बहुत बड़ी दी जाने वाली दक्षिणा होती थी।[3]

गौतमधर्मसूत्र में उल्लेख हुआ है कि राजा को समाज में बहुत सम्मान प्राप्त है और वह मधुपर्क द्वारा पूज्य होता है तथा ब्राह्मण भी उसे उचित आदर प्रदान करता है।[4]

राजा का चयन विषयक वर्णन

वैदिक राज्य प्रणाली में वंशानुगत एकतन्त्र राजत्व का स्थान नहीं है, किन्तु राजा को चुनने के लिए प्रजाजनों का बहुमत विषयक समर्थन अनेक स्थानों पर दिखाई पड़ता

---

1 न चास्य विषये राष्ट्रे क्षुधा रोगेण हिमातपाभ्यां वाऽवसोदेदभावाद्बुद्धिपूर्वं वा कश्चित्। आ0 ध0 सू0 – 2.10.25.11

2 गुरुनमात्यांश्च नातिजीवेत्, आ0 ध0 सू0 2.10.25.10; 2.10.26.1

3 ब्राह्मणस्वान्यपजिषगीमाणो राजा यो हन्यते तमाहुरात्मयूपो यज्ञोऽनन्त दक्षिण इति।

आ0 ध0 सू0 2.10.26.2

4 गौ0 ध0 सू0, 2.2.8, भूमि0, पृ0 40

है। ऋग्वेद,[1] यजुर्वेद[2] आदि में भी वर्णन आया है कि, "हे अग्ने! (सम्राट) विद्वान् मनुष्यों ने कल्याण और सुख–समृद्धि के लिए तुझ नियमित बन्धन वाले को प्रजा का पति अर्थात् मुखिया शासक बनाया है।" अथर्ववेद में भी आया है कि 'हे अग्ने!' सम्राट! तुझे ये ब्राह्मण लोग चुन रहे हैं तू हमारे इस चुनाव में मंगलकारक हो।[3]

ऐतरेय ब्राह्मण[4] में उल्लेख है कि देवों ने राजा के न रहने पर अपनी दुर्दशा का हाल देखकर एक मत से राजा का चुनाव किया। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि "जब कभी अकाल पड़ता है तो बलवान् दुर्बल को दबा बैठता है, पानी ही न्याय है।" इसका तात्पर्य यह है कि जब वर्षा नहीं होती तब धर्म या न्याय का राज्य समाप्त हो जाता है अर्थात् दण्ड के न्याय के अभाव में मात्स्य न्याय से बलवान् दुर्बल को खा जाता है।

वेदों में यह वर्णन बहुत स्थलों पर आया है कि राजा प्रजाजनों द्वारा चुना हुआ होना चाहिए, वह वंशानुगत अर्थात् जिसके राजा बनने में प्रजा के मत का कोई स्थान न हो नहीं होता। इस बारे में ऋग्वेद[5] का यह मन्त्र भी प्रमाणिक है कि हे वैश्वानर सब मनुष्यों के हितकारी अग्निदेव – सम्राट् विद्वानों ने वर्ण मर्यादा में रहने वाले चारों प्रकार के आर्य लोगों के कल्याण के लिए प्रसिद्ध तुझ को मार्गदर्शक ज्योति स्वरूप उत्पन्न किया है, अर्थात् यहाँ स्पष्ट कहा गया है कि सम्राट प्रजा के विद्वान् पुरुषों द्वारा बनाया जाता है। राष्ट्र राजा की उत्पत्ति का कारण है उस से उत्पन्न होने पर, उसकी सलाह से राजा बनने पर ही उस में दीप्ति आती है; मुझे बनाने वाले मेरे राष्ट्र के लोग हैं यह बात राजा को कभी नहीं भुलानी चाहिए जिससे वह उत्पथ में जाने से रुका रहे।[6] परन्तु आपस्तम्बधर्मसूत्र में

---

1 त्वामग्ने प्रथममायुमायवे देवा अकृण्वन् नहुषस्य विश्पतिम् इडामकृण्वन् मनुषस्य शासनीं पितुर्यत्पुत्रो ममकस्य जायते। ऋग्वेद 1.31.11

2 त्वाग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः। यजुर्वेद 27.3

3 त्वमग्ने वृणते ब्राह्मणा इमे शिवो अग्ने संवरणे भवा नः। अथर्व0 2.6.3

4 ऐतरेय ब्रा0 1/14, शत0 ब्रा0 11.6.24

5 तं त्वा देवासोजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय। ऋग्वेद 1.59.2

6 वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, पृ0 35

किस प्रकार राजा का चुनाव करना चाहिए इस विषय में किसी नियम विधान आदि का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। जबकि धर्मशास्त्रों[1] में लोक व्यवस्था जनतान्त्रिक प्रतीत होती है।

प्रासाद

आपस्तम्बधर्मसूत्र में प्रासाद निर्माणादि के सम्बन्ध में उल्लेख है कि राजा को अपना राजकार्य चलाने के लिए नगर के बीच में प्रासाद निर्माण करवाना चाहिए।[2] इस प्रासाद (महल) को बनाते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके द्वार उत्तर दिशा की ओर होने चाहिए।[3]

उस महल के आगे एक आवसथ भवन हो और उसकी संज्ञा "आमन्त्रण" करनी चाहिए।[4] नगर से कुछ दूरी पर दक्षिण की ओर सभाभवन बनायें जिसके दरवाज़े दक्षिण तथा उत्तर की ओर हों जिन दरवाज़ों से भीतर व बाहर की ओर देखा जा सके।[5] सभावभवन के मध्य में सभाध्यक्ष एक ऊँचा स्थान बनवाये तथा उस पर युग्म संख्या में काष्ठ के बने अक्ष (गोटियाँ) जितनी आवश्यक हो उतनी मात्रा में उस अक्षगृह में रखें। वहाँ तीन उच्च वर्णों के द्यूत खेलने वालों के बैठने की व्यवस्था होनी चाहिए जो पवित्र आचरण वाले तथा सत्यवादी होने चाहिए।[6]

---

1 गौ0 ध0 सू0, भूमि0, पृ0 40

2 अन्तरस्यां पुरि वेश्म। आ0 ध0 सू0 2.10.25.3

3 दक्षिणाद्वारं वेश्म तुरं च मापयेत् आ0 ध0 सू0 2.10.25.2

4 तस्य पुरस्तादावसथस्तदामन्त्रणमित्याचक्षते। आ0 ध0 सू0 2.10.25.4, पा0 सू0 1.3.31

5 दक्षिणेन पुरं सभा दक्षिणोदग्द्वारा यथोभयं सन्दृश्येत बहिरन्तरं चेति। आ0 ध0 सू0 2.10.25.5

6 (क) सभाया मध्येऽधिदेवनमुद्धत्याऽवोक्ष्यन्निवपेद्युग्मान् वैभीतकान् यथार्थान्, आ0 ध0 सू0 2.10.25.12

(ख) आर्याः शुचयस्सत्यशीला दीवितारस्स्युः। आ0 ध0 सू0 2.10.25.13, या0 स्मृ0 2.199.200

यह भी विधान किया गया है कि वेश्मनि (गृह) अवसथ (अतिथियों को ठहराने का स्थान), सभाभवन इन तीनों स्थानों पर निरन्तर अग्निप्रज्वलित रहनी चाहिए।[1] इन अग्नियों में नित्य हवन करना चाहिए जिसका नियम गृहस्थ के नित्य हवन की तरह होना चाहिए।[2]

अस्त्रों का अभ्यास, नृत्य, गीत वाद्यवादन आदि केवल राजा के अधीनस्थ जो सेवकगण आदि होते हैं उन्हीं के निवास स्थानों पर होवें अन्यत्र नहीं होना चाहिए।[3] आवसथों में अतिथियों को ठहराने, उन्हें अन्न, आसन, शय्या तथा पेय पदार्थादि से उनका आतिथ्य करना चाहिए। अतिथि–सेवा उन अतिथियों के गुण के अनुसार करनी चाहिए तथा वे अतिथि कम से कम वेदों के विद्वान् अवश्य होने चाहिए।[4]

सेवक

आपस्तम्बधर्मसूत्र[5] में सेवकों के सम्बन्ध में उल्लेख है कि जो ग्रामों तथा नगरों में प्रजा की रक्षा के लिए, रक्षकों की नियुक्ति के लिए तीन उच्च वर्णों के पवित्र आचरण वाले सत्यवादी हों उन्हीं की नियुक्ति करनी चाहिए। सेवकों में भी इसी प्रकार की गुणवत्ता, पवित्रता और सत्यवादिता आदि होनी चाहिए।[6] उन सेवकों का कार्य नगर की चारों दिशाओं में चोरों आदि से रक्षा करना होता है।[7] प्रत्येक ग्राम की वे कम से कम एक क्रोश

---

1 सर्वेष्वेवाऽजस्रा अग्नयस्स्युः, आ0 ध0 सू0 2.10.25.6

2 आ0 ध0 सू0 2.10.25.7

3 आयुधग्रहणे नृत्तगीतवादित्राणीति राजाधीनेभ्योऽन्यत्र न विद्येरन्। आ0 ध0 सू0 2.10.25.14

4 (क) आवसथे श्रोत्रियावराध्यानतिथीन् वासयेत्। आ0 ध0 सू0 2.10.25.8

(ख) तेषां यथागुणमावसथाः शय्याऽन्नपानं च विदेयम। आ0 ध0 सू0 2.10.25.9

5 ग्रामेषु नगरेषु चाऽऽर्याञ्छुचीन् सत्यशीलान् प्रजागुप्तये निदध्यात्। आ0 ध0 सू0 2.10.26.4

6 तेषां पुरुषा स्तथा गुणा एव स्युः। आ0 ध0 सू0 2.10.26.5

7 सर्वतो योजनं नगरं तस्करेभ्यो रक्ष्यम्। आ0 ध0 सू0 2.10.26.6

तक चारों ओर से रक्षा करें।[1] यदि इन सीमाओं के भीतर जो भी कुछ सम्पत्ति चोरी हो जाती तो उसे इन्हीं रक्षा पुरुषों को चुकाना होता था यह विधान बनाया गया था।[2]

मनुस्मृति में भी उल्लेख प्राप्त होता है कि देश की रक्षा करने के लिए राजा उत्तमरीति से दो गाँवों या तीन गाँवों के या पाँच गाँवों अथवा सौ गाँवों के बीच में रक्षा पुरुष और उनके ऊपर दारोगा नियुक्त करे।[3]

पुरोहित

आपस्तम्बधर्मसूत्र में पुरोहित का भी उल्लेख हुआ है। राजा ऐसे व्यक्ति को पुरोहित के पद पर नियुक्त करता था जो धर्मों का अर्थ समझाने में पारंगत हो। वह राजा की राजकार्य में सलाह रूप सहायता करता था तथा कर्म भ्रष्ट व्यक्तियों के लिए प्रायश्चित्त का निर्देश करता था। उसके द्वारा दण्ड आदि का विधान करने का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[4]

गौतमधर्मसूत्र में उल्लेख है कि विद्या सम्पन्न, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न, वाणी और रूप से युक्त प्रौढ़ आयु वाले, शीलवान्, लोकानुकूल आचरण वाले ब्राह्मण को पुरोहित बनावे और उसकी आज्ञा से 'श्रौत एवं स्मार्त' कर्म करने चाहिए क्योंकि ब्राह्मण की प्रेरणा से कर्म करने वाला क्षत्रिय (राजा) समृद्धशाली ही होता है, दुःखी और त्रस्त नहीं होता जो कि परम्परा से ज्ञात होता है।[5]

---

1 क्रोशो ग्रामेभ्यः आ0 ध0 सू0 2.10.26.7, पा0 सू0 (वा) 1.4.31

2 तत्र यन्मुष्यते तैस्तत्प्रतिदाप्यम्, आ0 ध0 सू0 2.10.26.8

3 द्वयोस्त्रयाणां पञ्चयानां मध्ये गुल्ममधिष्ठितम् तथा ग्राम शतानां च कुर्याद्राष्ट्रस्य संग्रहम्।

मनु स्मृ0 7/114

4 राजा पुरोहितं धर्मार्थकुशलम्, आ0 ध0 सू0 2.5.10, 15, 16; मनु स्मृ0 7/78

5 गौ0 ध0 सू0 2.2.12–14, सर्वतोधुरं पुरोहितं वृणुयात्। बौ0 ध0 सू0 1.10.18.7

रामायण[1] में भी कुल पुरोहित वसिष्ठ के समक्ष दशरथ की मृत्यूपरान्त मुनियों ने अमात्यों के साथ राम और लक्ष्मण के वन जाने की घोषण प्रकट करने का उल्लेख मिलता है।

महाभारत में भी परीक्षित की मृत्यु के बाद जनमेजय नामक बालक को जब राजा चुना गया था तो उसके पुरोहितों और अमात्यों की सहायता से राज्य चलाने का वर्णन मिलता है।[2]

कर

'करोति कीर्यते अनेन' इति – प्रायः समास के अन्त में कृ धातु से अप् प्रत्यय करने पर इस की निष्पत्ति होती है। जिसका अर्थ है करता है, कराता है, दुःखं, सुखं भयं–रः और भी इसके कई अर्थ हैं – प्रकाश–किरण, रश्मिमाला, हाथी की सूंड, लगान, शुल्क, भेंट, विवाह में हाथ ग्रहण करना।[3]

शब्द कल्पद्रुम कार ने करः का विश्लेषण इस तरह किया है 'कं सुखं राति ददातीति'। रा+कः – राज्–खम्–खजाना, अथ राज्ञां कर ग्रहण प्रकारः। भागधेय, बलि इत्यमरः।[4]

रघुवंश में महाकवि कालिदास ने कर विषय में उल्लेख किया है कि जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों के द्वारा पृथिवी से जल सोखकर हज़ार गुणा वर्षा करता है, वैसे ही राजा भी अपनी प्रजा से जो आय का छठा भाग कर के रूप में लेते थे उसे प्रजा के कल्याण में ही व्यय कर देते थे। अतः यह कर ग्रहण राजा प्रजा–हितार्थ करता था।[5]

---

1 रामायण 2/67

2 महा0 भा0 आदि पर्व 44/6

3 सं0 हि0 को0, पृ0 248

4 श0 क0 द्रु0, भाग 2, पृ0 29; अमरकोश 2/8/271; मनु स्मृ0 7/127–133

5 प्रजानामेव भूत्यर्थं सा ताभ्यो बलिमग्रहीत्। सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः।। रघुवंश 1/18

धर्मशास्त्रों, अर्थशास्त्रों एवं शिलालेखों में कई प्रकार के करों का उल्लेख मिलता है। राजा को जो कर दिया जाता है उसका प्राचीनतम नाम 'बलि' है।[1] ऋग्वेद[2] में राजा के लिए शुल्क या कर लाने वाले शब्द का प्रयोग 'बलिहृत' हुआ है। तैत्तिरीय ब्राह्मण[3] में उल्लेख है कि लोग राजा के लिए बलि लाते हैं। ऐतरेय ब्राह्मण[4] में वैश्य को 'बलिकृत' कहा गया है क्योंकि ब्राह्मण और क्षत्रिय अधिकांशतः कर मुक्त थे। मनुस्मृति[5], मत्स्यपुराण,[6] रामायण,[7] विष्णुधर्मसूत्र[8] में राजा द्वारा लगाए गए करों के लिए जो षष्ठ भाग रूप में था एतदर्थ 'बलि' शब्द का प्रयोग हुआ है।

राजकीय कोश को भरने का प्रमुख साधन ही कर ग्रहणहै। कौटिल्य ने कहा है कि आपत्तियों के समय कर लेने में राजा को प्रजा से याचना करनी चाहिए तथा शुष्क (बेकार) खेती पर तो कर लगाना ही नहीं चाहिए, आपत्ति काल में एक से ज़्यादा बार कर नहीं लेना चाहिए।[9]

कोश भरने का प्रमुख साधन कर ग्रहण करना है। धर्मसूत्रों में वर्णित राजा की आर्थिक व्यवस्था का आधार कर है, परन्तु कर ग्रहण के विषय में राजा स्मृतियों द्वारा निर्धारित कर के नियमों का पालन करके कर ग्रहण कर सकता था वह उससे अतिरिक्त कर नहीं लगा सकता था। वह मनमानी नहीं कर सकता था। कर की मात्रा वस्तुओं के

---

1 ऋग्वेद 7.6.5 एवं 10.173.6; रघुवंश 1/18

2 (क) स निरुध्या नहुषोयह्वो अग्निर्विशचक्रे बलिहृतः सहोभिः। ऋग्वेद 7.6.5

(ख) अथौ त् इन्द्रः केवेलीर्विशो बलिहृतेस्करत्। ऋग्वेद 10.173.6

3 हरन्त्यस्मै विशो बलिम्। तै0 ब्रा0 2.7.18.3

4 ऐतरेय ब्राह्मण 35.3

5 मनु स्मृ0 7/80

6 मत्स्य पु0 2.5.57

7 रामायण 3.6.11

8 वि0 ध0 सू0 22

9 कौटिल्य 5/2

मूल्यों एवं समय पर निर्भर थी क्योंकि इस को ग्रहण करने के लिए आक्रमण या दुर्भिक्ष आदि विपत्तियों का भी ध्यान करना होता था।[1]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख किया गया है कि राजा रक्षापुरुषों द्वारा न्यायोचित्त विधि से कर एकत्रित करवायें।[2] धर्मज्ञों ने कर के उद्देश्यों पर प्रकाश डाला तथा इसे प्रजाजनों की रक्षा करने के लिए राजा का वेतन बतलाया है। कर ले कर राजा राज्य की रक्षा करता है, आपत्तियों से बचाता है, धर्म एवं अर्थ नामक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि राजा कर ले कर लोगों के साथ पिता के समान व्यवहार करे।[3] महाभारत[4] में भी कर विषय में उल्लेख हुआ है कि जिस प्रकार मधुमक्खी मधु तो निकाल लेती है किन्तु फूलों को बिना पीड़ा दिये छोड़ देती है, उसी प्रकार राजा को प्रजा से बिना कष्ट दिये धन लेना चाहिए। मधुमक्खी जिस तरह मधु के लिए प्रत्येक फूल के पास जा सकती है, किन्तु वह फूल की जड़ नहीं काट लेती उसे भी माली के समान व्यवहार करना चाहिए, न कि अंगारकारक (कोयला फूंकने वाले) के समान (जो कोयला बनाने के लिए सम्पूर्ण पेड़ जड़ से काट लेता है)।

कर ग्रहण के नियम

आपस्तम्बधर्मसूत्र में आचार्य हरदत्त की व्याख्या[5] से विदित होता है कि 'श्रोत्रियः करं न दाप्यः। अन्ये दाप्याः।' अर्थात् श्रोत्रिय ब्राह्मण को छोड़कर अन्यों से कर ग्रहण किया जाता था। आपस्तम्बधर्मसूत्र में कर ग्रहण के विषय में गौतम के मत का भी उल्लेख हुआ है यथा

---

1 ध0 शा0 का इति0, सप्तम अध्याय, पृ0 667

2 धार्म्यं शुल्कमवहारयेत्, आ0 ध0 सू0 2.10.26.9

3 कामन्द 4.62.64, शुक्रनीतिसार 4/2–3, गौ0 ध0 सू0 2.1.28–29, मनु स्मृ0 7/128, 8/306,308, 7/80

4 यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः। तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया।।
पुष्पं पुष्पं विचिन्वीत मूलच्छेदं न कारयेत्। मालाकार इवारामे न यथाङ्गकारकः।।
महा0 भा0 उद्यो0 प0 34/17–28, मनु स्मृ0 7/140

5 आ0 ध0 सू0 2.10.26.10 सूत्र की व्याख्या

'विशंति भागः शुल्कः पण्ये'[1] आदि द्वितीय प्रश्न के दशम पटल के नवें सूत्र की व्याख्या में उद्धृत किया गया है।

विक्रय वस्तुओं का बीसवाँ भाग राजा का कर होता है। गौतम ने कहा है कि कृषक खेती की उपज का दसवाँ, आठवाँ या छठा भाग राजा को कर के रूप में प्रदान करें।[2]

आपस्तम्बधर्मसूत्र के अन्तर्गत कुछ धर्मज्ञों के मत वर्णित हैं कि पशुपालन से जीविका चलाने वाले और धन देकर ब्याज कमाने वाले प्रतविर्ष क्रमशः पशुओं तथा मूलधन का पचासवाँ भाग राजा को कर के रूप में प्रदान करें।[3] गौतमधर्मसूत्रकार[4] ने जो छठा भाग कहा है उनमें मूल, फल, पुष्प, औषधि, माँस, तृण और धनादि का छठा हिस्सा लेना चाहिए। हल्दी आदि मूलों, आम आदि फलों, फूल, औषधि, मधु माँस, तृण और ईंधन का विक्रय करने पर छठा भाग राजा को देना चाहिए ऐसा विधान है, कारीगर को एक दिन राजा के लिए कर रूप में काम करना चाहिए।[5]

कामन्दक ने कृषि, जल–स्थल के मार्ग, राजधानी, जलों के बाँध, हाथियों को पकड़ना, खानों में काम करना, सोना एकत्र करना, धनिकों से धन उगाहना आदि कोष भरण के लिए आठ प्रमुख स्रोतों का उल्लेख किया है।[6]

गौतम ने कहा है कि दाताओं की रक्षा करना ही राजा का धर्म है इसके लिए व कर ग्रहण के लिए भी उसे नित्य सावधान होकर तत्पर रहना चाहिए।[7]

राजा का धर्म है कि अत्यन्त विश्वासपात्र मनुष्य को कर वसूल करने में लगावे परन्तु जिसे इस कार्य में लगावे वह पूर्ण विश्वासपात्र हो। इसकी स्पष्ट घोषणा प्रजा के हर

---

1 विशतिभागः शुल्कः पण्ये, आ0 ध0 सू0 2.10.26.9 सूत्र पर की व्याख्या

2 राज्ञो बलिदानं कर्षकैर्दशममष्टमं षष्ठं वा, गौ0 ध0 सू0 2.1.24

3 पशुहिरण्ययोरप्येके पञ्चाशद्भागः, गौ0 ध0 सू0 2.1.24

4 मूल फल पुष्पौषधिमधुमांसतृणेन्धानानां षाष्टिक्यमिति। आ0 ध0 सू0 2.10.26.9 सूत्र पर व्याख्या

5 गौ0 ध0 सू0 2.1.27

6 कामन्दक 5/78–79

7 गौ0 ध0 सू0 2.1.28, 29

मनुष्य तक पहुँचे, इस बात का पूरा प्रबन्ध होना चाहिए।[1] जिससे 'भ्रातेन्द्रस्य सखा मम' कहने वाले स्वयं भयभीत हो।

मनुस्मृतिकार[2] ने भी विधान किया है कि राजा विश्वासपात्र कर्मचारियों द्वारा प्रजा से वार्षिक कर संग्रह करे, उसे लोक में वेद के अनुसार बर्ते और लोगों के साथ पिता के समान बर्ताव करे। राजा को यह 'कर' थोड़ा–थोड़ा वार्षिक लेना चाहिए जैसे जोंक, बछड़ा और भ्रमर अपना भक्ष्य थोड़ा–थोड़ा खाते हैं।

करग्रहण-अयोग्य व्यक्ति

आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख हुआ है कि विद्वान्, श्रोत्रिय, ब्राह्मण कर से मुक्त होना चाहिए।[3] सभी वर्णों की स्त्रियों से भी कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।[4] अल्पव्यस्क बालक जिनके दाढ़ी–मूँछ के चिह्न न हो अर्थात् युवावस्था के न आने तक उन से भी कर ग्रहण नहीं करना चाहिए।[5]

गुरुकुल में अध्ययन करने वाले विद्यार्थी भी कर से मुक्त कहे गये हैं।[6] जो शूद्रगण चरणों को धो कर जीवन निर्वाह करते हैं वे भी कर ग्रहण योग्य नहीं होते।[7] अन्धे, गूंगे, बहरे तथा रोगी भी कर से मुक्त बतलाये गये हैं।[8] वे तपस्वी जो धर्म के आचरण में लगे हो तथा

---

1 (क) इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम्। आरात् पूषन्नसि श्रुतः।। ऋग्वेद 6.56.5

(ख) आ तें स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम्। अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये।। ऋग्वेद 6.56.6

2 सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद्बलिम्।
स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तते पितृवन्नृषु।। मनु स्मृ0 7/80, 129
क्रयविक्रयमध्वानं – इत्यादि – मनु स्मृ0 7/127–129

3 अकरः श्रोत्रियः, आ0 ध0 सू0 2.10.26.10, गौ0 ध0 सू0 2.1.11

4 सर्ववर्णानां च स्त्रियः, आ0 ध0 सू0 2.10.26.11

5 कुमाराश्च प्राक् व्यञ्जनेभ्यः, आ0 ध0 सू0 2.10.26.12

6 ये च विद्यार्था वसन्ति, आ0 ध0 सू0 2.10.26.13., गौ0 ध0 सू0 2.1.12

7 शूद्रश्च पादावनेक्ता, आ0 ध0 सू0 2.10.26.15

8 अन्धमूकबधिररोगाविष्टाश्च, आ0 ध0 सू0 2.10.26.16

जिन संन्यासियों के लिए धन ग्रहण करना शास्त्र में निषिद्ध कहा है, वे कर मुक्त होते हैं, उन से कर लेने का विधान नहीं किया गया है।[1]

गौतम[2] एवं विष्णुधर्मसूत्र[3] के अनुसार देश में क्रीत एवं विक्रीत सामानों पर शुल्क 1/20 भाग था, जिसे हरदत्त एवं नन्द पण्डित ने विक्रय की हुई वस्तुओं के दाम पर पाँच प्रतिशत माना है।

कौटिल्य[4] ने कुछ चीजों व संस्कार की वस्तुओं पर शुल्क न लगाने की बात कही है जैसे विवाह सम्बन्धी सामानों, देवों की पूजा की वस्तुओं, चौल, उपनयन, गोदान, व्रत के उपकरणों, यज्ञ में दीक्षित करने के सामानों व विशिष्ट उत्सवों या क्रिया संस्कारों में उपस्थित वस्तुओं पर कर नहीं लगाया जाता।

शारीरिक श्रम करने वाले, नौका व गाड़ी चलाने वाले जो जीविका निर्वाह करते हैं, वे एक दिन राजा को कर रूप में इसी प्रकार दान करे राजा उनको भोजन खिलाएं।[5]

बौधायनधर्मसूत्र[6] में उल्लेख है कि राजा प्रजा की आय या पुण्य का छठाँ भाग वेतन के रूप में ले कर प्रजा की रक्षा करे।

कौटिल्य[7] ने करों एवं शुल्कों के प्रकारों का वर्णन किया है। प्राचीन काल में दान देते समय राजाओं ने दान लेने वालों को बुहत से करों से मुक्त किया है, जैसे कि उनके दानपात्रों से व्यक्त होता है। ऐसे अपवादों को परिहार कहा जाता है।[8]

---

1 तपस्विनश्च ये धर्मपराः, आ0 ध0 सू0 2.10.26.14
ये व्यर्था द्रव्यपरिग्रहैः। आ0 ध0 सू0 2.10.26.17

2 विंशति भागः शुल्कः पण्ये, गौ0 ध0 सू0 2.1.26

3 वि0 ध0 सू0 3/29

4 राष्ट्र पीडाकर भाण्डमुच्छिन्द्यादफलं च यत्।
महोपकारमुच्छुल्कं कुर्याद् बीजं तु दुर्लभम्। कौटिल्य 2/21

5 गौ0 ध0 सू0 2.1.32–34

6 षड्भागवृतो राजा रक्षेत्प्रजाम्। बौ0 ध0 सू0 1.10.17.1

7 कौटिल्य अर्थशास्त्र 2/15

8 एपि0 इण्डि0, जिल्द 20, पृ0 9, ध0 शा0 का इति0, पृ0 674

राजतरंगिणी में कहा गया है कि गया का श्राद्ध करने वाले कश्मीरियों पर एक प्रकार का कर लगता था।[1]

विक्रमादित्य पञ्चम के एक शिलालेख में एक ऐसा संकेत मिलता है कि उपनयन, विवाहों, वैदिक यज्ञों आदि पर भी कर लगता था।[2]

इस प्रकार से स्पष्टतः कहा जा सकता है कि कर के सम्बन्ध में आपस्तम्बधर्मसूत्र में भी कुछ अल्प मात्रा में वर्णन प्राप्त होता है। किन्तु अन्य धर्मसूत्रों तथा स्मृतियों व कौटिल्य अर्थशास्त्र में पर्याप्त कर विषयक वर्णन मिलता है। यह कर–प्रणाली वर्तमान समय में भी सरकार द्वारा कोष की पूर्ति के लिए चलाई जा रही है।

दण्ड विधान

जो किसी अपराध के लिए सजा या मूल्य चुकाता है उसे दण्ड कहते हैं। शब्द-कल्पद्रुमकारने दण्ड शब्द 'दम्' तथा 'दण्ड्' इन दोनों ही धातुओं से घञ् प्रत्यय करने पर निष्पन्न माना है। 'दण्डयति अनेन इति दण्डः'। दूसरी ओर 'दाम्यति अनेन इति दण्डः'। जिसके द्वारा दुष्टों का दमन किया जाये उसे दण्ड कहते हैं।, दम् धातु से औणादिक 'डः प्रत्यय करके निपातनात् दण्ड शब्द की निष्पत्ति होती है।[3] दण्डो 'दमनादित्याहुस्तेनादान्तान्दमयेत्' दमन करने के कारण उच्छृङ्खल व्यक्तियों को राजा वश में करता है। अतः इस विधि को दण्ड कहते हैं।[4]

---

1 राजतरंगिणी, 7/1008

2 एपि0 इण्डि0 जिल्द 20, पृ0 64, शिलालेख सन् 1012–13 ई0 विक्रमादित्य पञ्चम

3 शब्द कल्पद्रुम, द्वि0 भाग, पृ0 673,

'अमन्तात्डः' उणां 1/113, अमरकोष 3.3.41,

"विना दण्डं कथं राज्यं करोति जनकः किल।

धर्म्मे नवर्तते लोको दण्डचेन्न भवेद् यदि।" देवी-भा० 1/17/3

4 गौ0 ध0 सू0 2.2.28

प्राचीन साहित्य में 'दण्ड' का प्रयोग कई अर्थों में हुआ है। निरुक्तकार ने इस के निम्नलिखित प्रयोग किये हैं। दण्डयः पुरुषः यह तद्धितात्मक प्रयोग है जिसमें दण्डयः शब्द की निरुक्ति – 'दण्डमर्हति' दण्ड को जो प्राप्त करने योग्य है, 'दण्डेन सम्पद्यते वा' या जो दण्ड से युक्त किया जाता है, उसे दण्डय कहते हैं। दण्डशब्द की निरुक्ति इस प्रकार है यथा – 'दण्डो ददतेर्धारयतिकर्मणः' अर्थात् दद् धातु से धारण अर्थ में दण्ड बनता है। दण्ड ही सारी प्रजाओं को धारण करता है तथा दण्ड से ही सारा संसार व्यवस्थित होता है। 'दमनादित्यौपमन्यवः' उपमन्यु के पुत्र दमन करने से इसे दण्ड कहते हैं। 'गर्हायाम् यथा दण्डमरयाकर्षत्' निन्दनीय कार्य के लिए भी इसे किसी को लक्ष्य करके – इस दण्ड का प्रयोग होता है।[1]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में राजा द्वारा दिए जाने वाले दण्ड के विषय में विधान है कि राजा साक्षियों के आधार पर प्रश्न करके व शपथ दिलाकर अर्थात् सत्यता की पहचान कर अपराध पर अच्छी तरह विचार कर दण्ड प्रदान करे किन्तु सन्देह होने की स्थिति में दण्ड न दे। इस तरह जो राजा कर्त्तव्य का पालन करता है वह दोनों लोकों के सुखों को प्राप्त करता है।[2] यदि अदण्डनीय को दण्डित तथा दण्डनीय को अदण्डित करता है तो नरक में जाता है तथा अपयश को प्राप्त करता है।[3]

अपराधी को दण्ड देने के लिए राजा को यदि सन्देह हो जाए तो साक्षी को बुलाकर किसी शुभ दिन में प्रातःकाल जलती हुई अग्नि के समक्ष, जल से भरे कलश के निकट राजा अपनी उपस्थिति में दोनों पक्षों की सहमति से उत्तम गुण सम्पन्न साक्षी से निर्णायक

---

1 निरुक्त 2/1/11

2 सुविचित्तं विचित्या दैवप्रश्नेभ्यो राजा दण्डाय प्रतिपद्यत।।
न च सन्देहे दण्डंकुर्यात्। एवं वृत्तो राजौभौ लोकावभिजयति।
आ0 ध0 सू0 2.5.10.2–4, गौ0 ध0 सू0 2.4.12

3 अदण्डयान् दण्डयन्राजा दण्डयांश्चैवाप्यदण्डयन् अयशो महदाप्नोति प्रेत्य स्वर्गाच्च हीयते।। आ0 ध0 सू0 2.5.10.4 पर की व्याख्या, मनु स्मृ0 8/128

सत्यवचन की शपथ कराकर प्रश्न पूछे। यदि साक्षी का भाषण असत्य सिद्ध हुआ तो राजा उसे दण्ड दे।[1] इसके विपरीत यदि साक्षी असत्य भाषण करे तो मृत्यु के बाद वह नरक प्राप्त करता है। यदि साक्षी सत्य भाषण करता है तो सभी लोग अर्थात् देवताओं में भी वह प्रशंसा का पात्र होता है तथा मृत्युपरान्त वह स्वर्ग को प्राप्त करता है।[2]

कौटिल्य[3] ने दण्डनीति (जिसमें दण्ड नियमों की व्याख्या का वर्णन है) के जो चार प्रमुख उद्देश्य बताये हैं – यथा अलब्ध की प्राप्ति, लब्ध का परिरक्षण, रक्षित का विवर्धन एवं विवर्धता का सुपात्रों में विभाजन, इन को मनु[4] महाराज ने भी स्वीकार किया है। इसी बात का वर्णन महाभारत[5] के शान्ति पर्व में, याज्ञवल्क्य स्मृति[6] में, शुक्र नीतिसार[7] आदि में पाया जाता है।

दण्डी ने 'दशकुमारचरित' में लिखा है कि विष्णु गुप्त ने मौर्य राजा के लिए छः हज़ार श्लोकों में दण्डनीति को बनाया; कौटिल्य ने अपने ग्रन्थ को अर्थशास्त्र की सज्ञा दी है।[8]

यही दण्डनीति की बात रामायण,[9] महाभारत,[10] कामन्दक,[11] मत्स्यपुराण,[12] मानसोल्लास[13] आदि में भी अपने–अपने ढंग से कही है। राजा को दण्डधर की उपाधि दी

---

1 आ0 ध0 सू0 2.11.29.6–9, गौ0 ध0 सू0 2.4.7

2 (क) सत्ये स्वर्गस्सर्वभूतप्रशंसा च, आ0 ध0 सू0 2.11.29.10

(ख) स्वर्गः सत्यवचने विपर्यये नरकः। गौ0 ध0 सू0, 2.4.7

3 ध0 शा0 का इति0, पृ0 581

4 मनु स्मृ0 7/99–100

5 महा0 भा0, शान्ति पर्व 102/57, 140/5

6 याज्ञ0 स्मृ0 1/317

7 नीतिसार, 1/18

8 ध0 शा0 का इति0, पृ0 582

9 रामायण, 2/67

10 महा0 भा0, शान्तिपर्व 15/30 एवं 67/16

11 कामन्दक, 2/40

12 मत्स्य पु0 225/9

13 मानसोल्लास 2/16 श्लोक 1295

गई है। मत्स्यपुराण,[1] अग्निपुराण,[2] महाभारत[3] आदि में दण्ड के विषय में कहा है कि यह अनियन्त्रित लोगों को दबाता और अभद्र तथा अनीतिमान् को दण्डित करता है। दण्ड को मनु,[4] विष्णुधर्मसूत्रकार,[5] मत्स्यपुराण,[6] याज्ञवल्क्य[7] स्मृति, महाभारत[8] रघुवंश[9] आदि के विभिन्न ग्रन्थकारों ने देवत्व की स्थिति प्रदान की है। दण्ड सब पर राज्य करता है तथा दण्ड सबकी रक्षा करता है यह न्याय के रक्षकों के सो जाने पर भी जगा रहता है।[10]

कहीं पर 'दण्ड' सजा के लिए भी प्रयुक्त किया गया है – जैसे देवी भागवत् में लिखा है – 'बिना दण्डं कथं राज्यं करोति जनकः किल' अर्थात् जनक बिना दण्ड दिये किस प्रकार राज्य करते हैं। यहाँ दण्ड सजा के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[11]

मनुष्यों को प्रमाद से बचाने के लिए, अर्थ की रक्षा के लिए तो एक मर्यादा बनाई गयी है अर्थात् जो नियम बनाया गया है, उसे ही दण्ड कहते हैं।[12]

आपस्तम्बधर्मसूत्र में उल्लेख है कि यदि अपराधी ब्राह्मण वर्ण के अतिरिक्त दूसरे वर्ण का हो तो उसे राजा कर्म के अनुसार पुरोहित द्वारा बताया गया दण्ड स्वयं ही दे, राजा उसे मृत्यु दण्ड तक भी दे सकता है।[13]

---

1 मत्स्य पु0, 225/17

2 अग्नि पु0 226/16

3 महा0 भा0, शा0 पर्व0 15/8

4 मनु स्मृ0 7/18

5 वि0 ध0 सू0 3/95

6 मत्स्य पु0 225/8

7 याज्ञ स्मृ0 1/354

8 महा0 भा0, शा0 प0 121/15

9 रघुवंश 1/18

10 दण्डो . . . . . दमयेत। गौ0 ध0 सू0 2.2.28, 31, निरुक्त 2/1/11

11 देवी भागवत, 1.17.3

12 असम्मोहाय मर्त्यानामर्थ संरक्षणाय च
मर्यादा स्थापितां लोके दण्डसंज्ञा विशाम्यते।। महा0 भा0 शा0 प0 15/10

13 इतरेषां वर्णानामा प्राणविप्रयोगात् समवेक्ष्य तेषां कर्माणि राजा दण्डं प्रणयेत्। आ0 ध0 सू0 2.5.11.1

यदि प्रथम तीन उच्च वर्णों के पुरुष शूद्र वर्ण की स्त्री से मैथुन करे तो उन्हें देश से निकाल देना चाहिए। यदि शूद्र वर्ण का पुरुष प्रथम तीन उच्च वर्णों की स्त्री से मैथुन करता है, वह मृत्युदण्ड का भागी होता है तथा उस शूद्र से मैथुन कराने वाली उच्च वर्ण की स्त्री को व्रत, नियम तथा उपवास द्वारा कृश बना देना चाहिए ऐसा विधान किया गया है।[1] जो शूद्र प्रथम तीन उच्च वर्णों के पुरुषों के साथ वार्तालाप में, मार्ग में, चलने में, शय्या पर, बैठने के आसन पर तथा अन्य कर्मों में समानता का व्यवहार करे उसे डण्डे से पीटने का दण्ड देना चाहिए।[2]

निषिद्ध कृत्य के लिए दण्ड

आपस्तम्बधर्मसूत्र में विधान किया गया है कि यदि आभूषणों से अलंकृत होकर जानबूझ कर कोई युवक ऐसे स्थान पर प्रवेश करता है जहाँ विवाहिता स्त्री या विवाहयोग्य कन्या बैठी हो तो उसे आर्थिक दण्ड देना चाहिए।[3] यदि उसने उससे कही मैथुन ही कर लिया हो तो उसकी जननेन्द्रिय समूल काटने का दण्ड विधान है। यदि उसने कुमारी कन्या के साथ दुष्कर्म किया हो तो उसकी सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर उसे देश से निकाल देना चाहिए।[4]

---

1 नाश्य आर्यश्शूद्रायाम्। आ0 ध0 सू0 2.10.27.8,
वध्यश्शूद्र आर्यायाम्। आ0 ध0 सू0 2.10.27.9, गौ० ध० सू० २-३-२
दारं चास्य कर्शयेत्। आ0 ध0 सू0 2.10.27.10; 2.10.26.19; याज्ञ0 स्मृ0 2/286

2 (क) वाचि पथि शय्यायामासन इति समो भवतोदण्डताडनम्। आ0 ध0 सू0 2.10.27.15
(ख) आसन शयन वाक्यपथिषु समप्रेप्सुर्दण्डयः। गौ0 ध0 सू0 2.3.5

3 'बुद्धि पूर्वं तु दुष्टभावो दण्डयः'।। आ0 ध0 सू 2.1.0.26.19

4(क) 'सन्निपाते वृत्ते शिश्नच्छेदनं सवृषणस्य'।। आ0 ध0 सू0 2.10.26.20,
(ख) कुमार्यां तु स्वान्यादाय नाश्यः'।। आ0 ध0 सू. 2.10.26.21,
(ग) 'आर्यास्त्र्यभिगमने लिङ्गोद्धारः स्वहरणं च' गौ0 ध0 सू0 2.3.2

गौतमधर्मसूत्र के अनुसार विहित कर्म न करने एवं निषिद्ध कर्म करने वाले से राजा नित्य ही भोजन व वस्त्र के अतिरिक्त धन का हरण करे ऐसा उल्लेख है।[1] कुछ धमर्ज्ञों का मत है कि जो ब्राह्मण अपने ही वर्ण की पर स्त्री से मैथुन करता वह पतित व्यक्ति के लिए विहित प्रायश्चित्त का चतुर्थांश करे अर्थात् तीन वर्ष तक प्रायश्चित्त करने का विधान है।[2]

शूद्र द्वारा प्रथम तीन वर्णों के गुणवान् व्यक्तियों की निन्दा किये जाने पर या उनकों अपशब्द कहने पर शूद्र की जीभ काट देने का दण्ड विधान है।[3]

यदि शूद्र किसी पुरुष का वध करे या चोरी करे या भूमि पर बलपूर्वक कब्जा करे तो शूद्र की सम्पूर्ण सम्पत्ति का अपहरण कर लेना चाहिए तथा उसका वध कर देना चाहिए शूद्र के लिए ऐसा दण्ड विधान है।[4] यदि ब्राह्मण उपर्युक्त अपराध करता है तो उसकी आँखों में पटबन्ध आदि से इस प्रकार बन्द करना चाहिए कि वह जीवन भर देख ही ने सके। ऐसा विधान किया गया है।[5]

बौधायनधर्मसूत्र[6] में उल्लेख है कि क्षत्रिय आदि या अन्य वर्ण के व्यक्ति द्वारा ब्राह्मण का वध करने पर उसके वध करने व सम्पत्ति हरण करने का दण्ड विधान है। यदि क्षत्रिय आदि समान (जाति, कुल, धन, वृत्ति आदि के आधार पर) किसी व्यक्ति का वध करते हैं तो उनकी शक्ति को देखकर यथोचित्त दण्ड देने का विधान है।

---

1 शिष्टाकरणे प्रतिषिद्धसेवायां च नित्यं चैलपिण्डादूर्ध्वं स्वहरणम्। गौ0 ध0 सू0 2.3.25

2 आ0 ध0 सू0 2.10.27.11 मनु0 स्मृ0 8/378

3 आ0 ध0 सू0 2.10.27.14 गौ0 ध0 सू 2.3.1, मनु स्मृ0 8/179,8/270

4 आ0 ध0 सू0 2.10.27.16 मनु स्मृ0 8/267, 8/270

5 आ0 ध0 सू0 2.10.27–17

6 क्षत्रियादीनां ब्राह्मणवधे वधस्सर्वस्वहरणं च।।" बौ0 ध0 सू0 1.10.21.19,

तेषां .. .. दण्डान् प्रकल्पेत्।। बौ0 ध0 सू0 1.10.21.20

नियम का उल्लंघन करने वाले अथवा किसी अन्य प्रकार के अपराधी को बन्धन करके एकान्त में रखने का विधान है।[1]

जब तक वह अपराधी यह प्रतिज्ञा न करे कि मैं नियम का पालन करूँगा तथा निषिद्ध कर्मों से दूर रहूँगा तब तक उसे बन्धन में रखना चाहिए।[2] यदि वह इस तरह की प्रतिज्ञा करने में सहमत नहीं होता तो उसे देश से निकालने का विधान किया गया है।[3]

अन्य दण्ड

यदि कोई व्यक्ति दूसरे का खेत खेती करने के लिए लेकर उसमें खेती करने का यत्न नहीं करता, जिस कारण उस खेत में फल उत्पन्न नहीं होता तो ऐसे मनुष्य के धनी होने पर उससे संभावित फसल का मूल्य खेत के स्वामी को दिलाना चाहिए।[4]

जो मज़दूर कृषि कर्म के लिए जमींदार के वश में न रहकर बीच में काम छोड़ देता है ऐसे मज़दूर को पीटने का दण्ड विधान किया गया है।[5] पशु विषयक चरवाहे को दण्ड-जो चरवाहा गाय चराने का कार्य छोड़ देता है उसे भी पीटने का दण्ड देना चाहिए।[6]

गौतमधर्मसूत्र[7] में कहा गया है कि विहित कर्म न करने पर और निषिद्ध कर्म करने पर राज्य उस व्यक्ति से नित्य ही भोजन वस्त्र के अतिरिक्त धन का हरण कर ले। इस निमित्त यही दण्ड विधान है।

---

1 आ0 ध0 सू0 2.10.27.18

2 आ0 ध0 सू0 2.10.27.19

3 आ0 ध0 सू0 2.10.27.20

4 क्षेत्र परिगृह्योत्थानाभावात्फलाभावे यस्समृद्धस्स भावि तदपहार्यः आ0 ध0 सू0 2.11.28.1 गौ0 ध0 सू0 2.3.23

5 अवशिनः कीनाशस्य कर्मन्यासे दण्डताडनम्' आ0 ध0 सू0 2.11.28.2

6 'तथा पशुपस्य' आ0 ध0 सू0 2.11.28.3

7 (क) शिष्टाकरणे ..... उर्ध्वस्वहरणम् गौ0 ध0 सू0 2.3.24

(ख) अवरोधनं चास्य पशूनाम्। आ0 ध0 सू0 2.11.28.4

चरवाहा यदि गाय चराने का कार्य छोड़ देता है तो उसके पास चराने या रक्षार्थ जो पशु दिये गये हैं उनका उससे अपहरण करके दूसरे गोप को देना चाहिए।[1]

गौतमधर्मसूत्र[2] में उल्लेख है कि गाय, बैल, स्त्री और विवाह से सबंद्ध विवाद का शीघ्र निर्णय करना चाहिए। गोशाला में बंधे हुए पशु यदि बन्धन तुड़ाकर गोशाले से निकल कर किसी की फसल आदि खा लेते हैं तो फसल का स्वामी या राजपुरुष उन पशुओं को रोककर उन्हें कमज़ोर बना दे किन्तु उन्हें अधिक कष्ट न दें।[3] यदि पशुओं का रखवाला पशुओं की देखभाल का उत्तरदायित्त्व न निभा कर उन्हें मर जाने देता है या चोरों आदि से अपहृत होने देता है तो उसे उनका मूल्य स्वामी को चुकाने का दण्ड स्वरूप विधान है। यदि राजपुरुष पशुओं के स्वामी द्वारा बिना रखवाले के वन में छोड़ गए पशुओं को देख ले तो उन्हें ग्राम में लाकर स्वामी को सौंप देना चाहिए।[4] यदि पशुओं का स्वामी इसी प्रकार की असावधानी पुनः करता है तो पशुओं को कुछ दिन घेर कर रखे और फिर बाद में उन्हें वापस कर देने का उल्लेख है।[5]

जो व्यक्ति ईंधन, जल, मूल ,फूल, फल, गन्ध, घास, शाक आदि बिना यह जाने हुए कि वे किसी अन्य व्यक्ति के हैं उन्हें ग्रहण कर ले तो उसे राजपुरुष वाणी से डाँटकर रोके।[6] जो व्यक्ति इन उपर्युक्त चीजों को जानबूझ कर ग्रहण कर लेता है तो दण्ड स्वरूप

---

1 . . . . . अवरोधनं चास्यपशूनाम, आ0 ध0 सू0 2.11.28.4

2 गौ0 ध0 सू0 2.4.29

3 हित्वा व्रजमादिनः कर्शयेत्पशून् । । आ0 ध0 सू 2.11.28.3
नाऽतिपातयेत्' आ0 ध0 सू0 2.11.28.6

4 अवरूध्य पशून्मारणे नाशने वा स्वामिभ्योऽवसृजेत् । । आ0 ध0 सू0 2.11.28.7,
प्रमदारण्ये . . .. . .अवसृजेत् । आ0 ध0 सू0 2.11.28.8

5 पुनः प्रमादादुत्सृष्टेषु सकृदवरूध्य स्वामिभ्योऽवसृजेत् । । आ0 ध0 सू0 2.11.28.9

6 परपरिग्रहमविद्वानाददान एधोदके मूले, पुष्पे, फले, गन्धे ग्रासे शाक इति वाचा बाध्यः ।
आ0 ध0 सू0 2.11.28.11

उसके वस्त्र का अपहरण कर लेना चाहिए।[1]

इस विषय में गौतमधर्मसूत्रकार के अनुसार गाय के लिए चारा श्रौत एवं स्मार्त अग्नि के लिए ईंधन, देव पूजा के लिए लताओं एवं वृक्षों के फूल तथा अरक्षित पेड़ों के फल स्वामी की आज्ञा के बिना भी स्वेच्छापूर्वक ग्रहण करने का उल्लेख है।[2] इसके विपरीत जो व्यक्ति प्राणों का संकट होने पर जानबूझकर दूसरे का भोजन ग्रहण कर लेता है उसे दण्ड नहीं देना चाहिए।[3]

दण्ड से रक्षा

आपस्तम्बधर्मसूत्र में विधान है कि आचार्य, ऋत्विक्, स्नातक और राजा किसी अपराधी को जिसे मृत्युदण्ड को छोड़कर कोई अन्य दण्ड मिला हो उसकी रक्षा कर सकते हैं अर्थात् उसे छुड़ा सकते हैं।[4] बौधायनधर्मसूत्र में उल्लेख है कि ब्राह्मण को किसी भी प्रकार के अपराध करने पर वध का दण्ड नहीं होता।[5] मनुस्मृतिकार[6] ने कहा है कि ब्राह्मण के सब पापों में स्थित होने पर भी उसका वध नहीं करना चाहिए। अपितु उसे धन सहित अक्षत (बिना किसी चिह्न घाव के) शरीर के राज्य से बाहर निकाल देना चाहिए। अतः आपस्तम्बधर्मसूत्र के अनुसार राज्यव्यवस्था के अन्तर्गत राजा को विवेक का आश्रय लेकर नियमों का पालन करना होता है।

---

1 विदुषो वाससः परिमोषणम्।। आ0 ध0 सू0 2.11.28.12

2 गोग्न्यर्थे तृणमेधानवीरुद्वस्पतीनां च पुष्पाणि
स्ववदाददीत फलानि चापरिवृतानाम्।। गौ0 ध0 सू0 2.3.25

3 अदण्ड्यः कामकृते तथा प्राणसंशयं भोजनमाददानः।। आ0 ध0 सू0 2.11.28.13

4 आचार्य ऋत्विक्स्नातको राजेति त्राणं स्युरन्यत्र वध्यात्।। आ0 ध0 सू0 2.10.27.21

5 अवध्यो ब्राह्मणस्सर्वापराधेषु।। बौ0 ध0 सू0 1.10.19.–17 गौ0 ध0 सू0 2.3.43

6 न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेष्वपि स्थितम्।
राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्र धनमक्षतम्।। मनु स्मृ0 8/380